कथं पूजादयः शम्भोर्धर्मकामार्थमुक्तये।
वक्तुमर्हसि शैलादे विनयेनागताय मे॥ १७

सूत उवाच

सम्प्रेक्ष्य भगवान्नन्दी निशम्य वचनं पुनः।
कालवेलाधिकाराद्यमवदद्वदतां वरः॥ १८

शैलादिरुवाच

गुरुतः शास्त्रतश्चैवमधिकारं ब्रवीम्यहम्।
गौरवादेव संज्ञैषा शिवाचार्यस्य नान्यथा॥ १९
स्वयमाचरते यस्तु आचारे स्थापयत्यपि।
आचिनोति च शास्त्रार्थानाचार्यस्तेन चोच्यते॥ २०
तस्माद्वेदार्थतत्त्वज्ञमाचार्यं भस्मशायिनम्।
गुरुमन्वेषयेद्भक्तः सुभगं प्रियदर्शनम्॥ २१
प्रतिपन्नं जनानन्दं श्रुतिस्मृतिपथानुगम्।
विद्ययाभयदातारं लौल्यचापल्यवर्जितम्॥ २२
आचारपालकं धीरं समयेषु कृतास्पदम्।
तं दृष्ट्वा सर्वभावेन पूजयेच्छिववद्गुरुम्॥ २३



आत्मना च धनेनैव श्रद्धावित्तानुसारतः।
तावदाराधयेच्छिष्यः प्रसन्नोऽसौ यथा भवेत्॥ २४
सुप्रसन्ने महाभागे सद्यः पाशक्षयो भवेत्।
गुरुर्मान्यो गुरुः पूज्यो गुरुरेव सदाशिवः॥ २५
संवत्सरत्रयं वाथ शिष्यान् विप्रान् परीक्षयेत्।
प्राणद्रव्यप्रदानेन आदेशैश्च इतस्ततः॥ २६
उत्तमश्चाधमे योज्यो नीच उत्तमवस्तुषु।
आकृष्टास्ताडिता वापि ये विषादं न यान्ति वै॥ २७
ते योग्याः शिवधर्मिष्ठाः शिवधर्मपरायणाः।
संयता धर्मसम्पन्नाः श्रुतिस्मृतिपथानुगाः॥ २८

लिये शिवकी पूजा आदिका क्या विधान है? हे शैलादे! विनम्रतापूर्वक मुझ आये हुएको यह बतानेकी कृपा कीजिये॥ १६-१७॥

सूतजी बोले—[हे मुनीश्वरो!] उनकी ओर देखकर तथा पुनः उनका वचन सुनकर वक्ताओंमें श्रेष्ठ भगवान् नन्दी समुचित समय उपस्थित जानकर उनसे कहने लगे॥ १८॥

शैलादि बोले—गुरु तथा शास्त्रसे प्राप्त ज्ञानके आधारपर मैं अधिकार (पात्रता)-के विषयमें बता रहा हूँ। गौरवके कारण ही शिवशास्त्रके आचार्यकी 'गुरु'—यह संज्ञा होती है, इसके विपरीत नहीं। जो स्वयं आचरण करता है, [दूसरोंको भी] आचारमें स्थापित करता है तथा शास्त्रके अर्थज्ञानका संग्रह करता है, वह आचार्य कहा जाता है॥ १९-२०॥

अतः भक्तको चाहिये कि वह वेदार्थतत्त्वज्ञ, भस्म धारण करनेवाले, सुशील, प्रिय दर्शनवाले, सम्मानित लोगोंको आनन्दित करनेवाले, श्रुति तथा स्मृतिमें प्रतिपादित मार्गका अनुसरण करनेवाले, विद्यासे अभय प्रदान करनेवाले, लालच तथा चपलतासे रहित, आचारका पालन करनेवाले, धैर्यशाली तथा सन्ध्या आदिकालोंमें समुचित स्थानपर स्थित रहनेवाले आचार्य गुरुका अन्वेषण करे। उस गुरुको प्राप्त करके अनन्य भावसे शिवकी ही भाँति उनका पूजन करना चाहिये। शिष्यको चाहिये कि वह शरीरसे, धनसे तथा श्रद्धा-विश्वासके अनुसार गुरुकी वैसी सेवा करे, जिससे वे प्रसन्न हो जायँ। महाभाग गुरुके प्रसन्न हो जानेपर शीघ्र पाश (बन्धन)-का क्षय हो जाता है। गुरु मान्य हैं, गुरु पूज्य हैं, गुरु साक्षात् सदाशिव ही हैं॥ २१—२५॥

गुरुको भी चाहिये कि प्रिय वस्तुके प्रदानसे तथा इधर-उधर अनेक कार्योंके लिये आदेशोंद्वारा तीन वर्षोंतक ब्राह्मण-शिष्योंकी परीक्षा करे। उत्तम [शिष्य]-को अधम कार्यमें तथा अधमको उत्तम कार्योंमें नियुक्त करना चाहिये। गुरुके द्वारा आकृष्ट तथा ताड़ित होनेपर भी जो शिष्य विषादको प्राप्त नहीं होते, वे ही शिवधर्मके अधिकारी हैं। शिवधर्मिष्ठ, शिवधर्मपरायण, जितेन्द्रिय, धर्मसम्पन्न, श्रुति-स्मृतिके मार्गका अनुसरण करनेवाले,

सर्वद्वन्द्वसहा धीरा नित्यमुद्युक्तचेतसः।
परोपकारनिरता गुरुशुश्रूषणे रताः॥ २९

आर्जवा मार्दवाः स्वस्था अनुकूलाः प्रियंवदाः।
अमानिनो बुद्धिमन्तस्त्यक्तस्पर्धा गतस्पृहाः॥ ३०

शौचाचारगुणोपेता दम्भमात्सर्यवर्जिताः।
योग्या एवं द्विजाः सर्वे शिवभक्तिपरायणाः॥ ३१

एवंवृत्तसमोपेता वाङ्मनःकायकर्मभिः।
शोध्या एवंविधाश्चैव तत्त्वानां च विशुद्धये॥ ३२

शुद्धो विनयसम्पन्नो मिथ्याकटुकवर्जितः।
गुर्वाज्ञापालकश्चैव शिष्योऽनुग्रहमर्हति॥ ३३

गुरुश्च शास्त्रवित्प्राज्ञस्तपस्वी जनवत्सलः।
लोकाचाररतो ह्येवं तत्त्वविन्मोक्षदः स्मृतः॥ ३४

सर्वलक्षणसम्पन्नः सर्वशास्त्रविशारदः।
सर्वोपायविधानज्ञस्तत्त्वहीनस्य निष्फलम्॥ ३५

स्वसंवेद्ये परे तत्त्वे निश्चयो यस्य नात्मनि।
आत्मनोऽनुग्रहो नास्ति परस्यानुग्रहः कथम्॥ ३६

प्रबुद्धस्तु द्विजो यस्तु स शुद्धः साधयत्यपि।
तत्त्वहीने कुतो बोधः कुतो ह्यात्मपरिग्रहः॥ ३७

परिग्रहविनिर्मुक्तास्ते सर्वे पशवोदिताः।
पशुभिः प्रेरिता ये तु सर्वे ते पशवः स्मृताः॥ ३८

तस्मात्तत्त्वविदो ये तु ते मुक्ता मोचयन्त्यपि।
संवित्तिजननं तत्त्वं परानन्दसमुद्भवम्॥ ३९

तत्त्वं तु विदितं येन स एवानन्ददर्शकः।
न पुनर्नाममात्रेण संवित्तिरहितस्तु यः॥ ४०

अन्योन्यं तारयेन्नैव किं शिला तारयेच्छिलाम्।
येषां तन्नाममात्रेण मुक्तिर्वै नाममात्रिका॥ ४१

[सुख-दुःख आदि] सभी द्वन्द्वोंको सहनेवाले, धैर्यशाली, सदा उद्योगशील चित्तवाले, परोपकारमें लगे रहनेवाले, गुरुसेवामें निरत, सरल तथा मृदु स्वभाववाले, स्वस्थचित्त, गुरुके अनुकूल, प्रिय बोलनेवाले, मानरहित, बुद्धिसम्पन्न, स्पर्धाविहीन, कामनाशून्य, शौच-आचार आदि गुणोंसे युक्त, दम्भ तथा मात्सर्यसे विहीन—इस प्रकारके शिवभक्तिपरायण सभी द्विज शिष्य होनेके अधिकारी हैं। [इन्द्रिय आदि चौबीस] तत्त्वोंकी शुद्धिके लिये मन-वाणी-कर्मसे इन आचरणोंसे सम्पन्न इस प्रकारके शिष्योंका शोधन करना चाहिये। शुद्ध हृदयवाले, विनयसे सम्पन्न, मिथ्या तथा कटुभाषणसे रहित और गुरुकी आज्ञाका पालन करनेवाला शिष्य ही गुरुकृपाके योग्य होता है॥ २९—३३॥

शास्त्रज्ञ, बुद्धिमान्, तपस्वी, लोकप्रिय, लोकाचारमें रत तथा तत्त्वज्ञानी गुरु मोक्ष देनेमें समर्थ बताया गया है। गुरु सभी लक्षणोंसे सम्पन्न, समस्त शास्त्रोंमें निष्णात तथा सभी उपायोंके विधानको जाननेवाला भी हो, किंतु यदि वह आत्मज्ञानसे रहित हो, तो सब कुछ निष्फल है। स्वयं अनुभूत किये जानेवाले परात्मतत्त्वमें जिसकी निश्चित धारणा न हो, उसका अपना ही कल्याण नहीं है, तो उसके द्वारा दूसरेका कल्याण कैसे सम्भव है? जो आत्मज्ञानी द्विज है, वह स्वयं शुद्ध है और दूसरोंको भी शुद्ध कर देता है। तत्त्वहीन गुरुमें बोध कहाँसे होगा और उसका आत्मोद्धार कैसे होगा! जो आत्मज्ञानसे रहित हैं, वे सब पशु कहे गये हैं। पशुतुल्य द्विजके द्वारा जो शिष्य ज्ञानप्रेरित किये जाते हैं, वे सब भी पशु ही कहे गये हैं। अतः जो लोग तत्त्ववेत्ता हैं, वे ही मुक्त हैं और दूसरोंको भी मुक्त कर सकते हैं। आत्मबोध उत्पन्न करनेवाला तत्त्व परानन्दको उत्पन्न करता है। उस तत्त्वको जिसने जान लिया, वही परमानन्दका दर्शन करानेमें समर्थ है, नाममात्रका गुरु ऐसा नहीं कर सकता। जो आत्मज्ञानविहीन है, वह दूसरेको कभी नहीं तार सकता, क्या [कोई] शिला दूसरी

योगिनां दर्शनाद्वापि स्पर्शनाद्भाषणादपि।
सद्यः सञ्जायते चाज्ञा पाशोपक्षयकारिणी॥ ४२

अथवा योगमार्गेण शिष्यदेहं प्रविश्य च।
बोधयेदेव योगेन सर्वतत्त्वानि शोध्य च॥ ४३

षडर्धशुद्धिर्विहिता ज्ञानयोगेन योगिनाम्।
शिष्यं परीक्ष्य धर्मज्ञं धार्मिकं वेदपारगम्॥ ४४

ब्राह्मणं क्षत्रियं वैश्यं बहुदोषविवर्जितम्।
ज्ञानेन ज्ञेयमालोक्य कर्णात्कर्णागतेन तु॥ ४५

दीपाद्दीपो यथा चान्यः सञ्चरेद्विधिवद्गुरुः।
भौवनं च पदं चैव वर्णाख्यं मात्रमुत्तमम्॥ ४६

कालाध्वरं महाभाग तत्त्वाख्यं सर्वसम्मतम्।
भिद्यते यस्य सामर्थ्यादाज्ञामात्रेण सर्वतः॥ ४७

तस्य सिद्धिश्च मुक्तिश्च गुरुकारुण्यसम्भवा।
पृथिव्यादीनि भूतानि आविशन्ति च भौवने॥ ४८

शब्दः स्पर्शस्तथा रूपं रसो गन्धश्च भावतः।
पदं वर्णाख्यकं विप्र बुद्धीन्द्रियविकल्पनम्॥ ४९

कर्मेन्द्रियाणि मात्रं हि मनो बुद्धिरतः परम्।
अहङ्कारमथाव्यक्तं कालाध्वरमिति स्मृतम्॥ ५०

पुरुषादिविरिञ्च्यन्तमुन्मनत्वं परात्परम्।
तथेशत्वमिति प्रोक्तं सर्वतत्त्वार्थबोधकम्॥ ५१

अयोगी नैव जानाति तत्त्वशुद्धिं शिवात्मिकाम्॥ ५२

शिलाको [नदी आदिसे] पार करा सकती है। जिनका नाममात्रका ज्ञान है, उनकी मुक्ति भी नाममात्रकी होती है॥ ३४—४१॥

योगियोंके दर्शन, स्पर्श तथा भाषणमात्रसे ही बन्धनका नाश करनेवाला अनुग्रह शीघ्र ही होता है। अथवा गुरुको योगमार्गसे शिष्यके देहमें प्रवेश करके योगके द्वारा सभी तत्त्वोंका शोधन करके शिष्यको ज्ञान प्रदान करना चाहिये। योगियोंके लिये ज्ञानयोगसे तीन गुणोंकी शुद्धि विहित है। गुरुको चाहिये कि धर्मको जाननेवाले, धर्मपरायण, वेदमें पारंगत तथा समस्त दोषोंसे रहित ब्राह्मण, क्षत्रिय अथवा वैश्य शिष्यकी सम्यक् परीक्षा करके ज्ञानसे ज्ञेयको देखकर गुरुपरम्परासे प्राप्त मार्गके द्वारा एक दीपकसे दूसरे दीपककी भाँति विधिपूर्वक उसे बोधमय करे॥ ४२—४५ $^{1}/_{2}$ ॥

भौवन, पद, वर्ण, मात्रा एवं कालाध्वरसंज्ञक—ये तत्त्व सर्वसम्मत एवं उत्तम हैं। हे महाभाग सनत्कुमार! गुरुके आज्ञामात्रके प्रभावसे जिस शिष्यकी इन तत्त्वोंकी संसारोन्मुखता नष्ट हो जाती है, उसी शिष्यको गुरुकारुण्यसमुत्पन्न सिद्धि और मुक्ति मिल जाती है। पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश—ये पंचमहाभूत भौवन पदवाच्य हैं अथवा इनका समावेश भौवनमें होता है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गन्ध—ये अपने स्वभावसे पद कहलाते हैं। हे विप्र! श्रोत्र, त्वक्, नेत्र, जिह्वा, घ्राण—ये पंचज्ञानेन्द्रियाँ वर्णसंज्ञक हैं। वाक्, पाणि, पाद, पायु, उपस्थ—ये पाँचों कर्मेन्द्रियाँ मात्रसंज्ञक हैं। मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार—इस अन्तःकरण-चतुष्टयको कालाध्वर कहा गया है। मानवीय आनन्दसे लेकर ब्रह्मानन्दपर्यन्त [ब्रह्मपदपर्यन्त] उन्मनी अवस्था [अमनस्कत्व] श्रेष्ठसे श्रेष्ठतर है तथा सर्वतत्त्व-प्रकाशक ईशत्व इनसे भी श्रेष्ठ कहा गया है। इस कल्याणस्वरूपा तत्त्वशुद्धिको योगज्ञानशून्य प्राणी नहीं जानता है॥ ४६—५२॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे उत्तरभागे शिवपूजनोपायवर्णनं नाम विंशोऽध्यायः ॥ २०॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत उत्तरभागमें 'शिवपूजनोपायवर्णन' नामक बीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २०॥

इक्कीसवाँ अध्याय

शिवदीक्षाविधि-वर्णन एवं शिवार्चनका माहात्म्य

सूत उवाच

परीक्ष्य भूमिं विधिवद्गन्धवर्णरसादिभिः।
अलङ्कृत्य वितानाद्यैरीश्वरावाहनक्षमाम्॥ १

एकहस्तप्रमाणेन मण्डलं परिकल्पयेत्।
आलिखेत्कमलं मध्ये पञ्चरत्नसमन्वितम्॥ २

चूर्णैरष्टदलं वृत्तं सितं वा रक्तमेव च।
परिवारेण संयुक्तं बहुशोभासमन्वितम्॥ ३

आवाह्य कर्णिकायां तु शिवं परमकारणम्।
अर्चयेत्सर्वयत्नेन यथाविभवविस्तरम्॥ ४

दलेषु सिद्धयः प्रोक्ताः कर्णिकायां महामुने।
वैराग्यज्ञाननालं च धर्मकन्दं मनोरमम्॥ ५

वामा ज्येष्ठा च रौद्री च काली विकरणी तथा।
बलविकरणी चैव बलप्रमथिनी क्रमात्॥ ६

सर्वभूतस्य दमनी केसरेषु च शक्तयः।
मनोन्मनी महामाया कर्णिकायां शिवासने॥ ७

वामदेवादिभिः सार्धं द्वन्द्वन्यायेन विन्यसेत्।
मनोन्मनं महादेवं मनोन्मन्याथ मध्यतः॥ ८

सूर्यसोमाग्निसम्बन्धात्प्रणवाख्यं शिवात्मकम्।
पुरुषं विन्यसेद्वक्त्रं पूर्वे पत्रे रविप्रभम्॥ ९

अघोरं दक्षिणे पत्रे नीलाञ्जनचयोपमम्।
उत्तरे वामदेवाख्यं जपाकुसुमसन्निभम्॥ १०

सद्यं पश्चिमपत्रे तु गोक्षीरधवलं न्यसेत्।
ईशानं कर्णिकायां तु शुद्धस्फटिकसन्निभम्॥ ११

चन्द्रमण्डलसङ्काशं हृदयायेति मन्त्रतः।
वाह्नेये रुद्रदिग्भागे शिरसे धूम्रवर्चसे॥ १२

शिखायै च नमश्चेति रक्ताभे नैर्ऋते दले।
कवचायाञ्जनाभाय इति वायुदले न्यसेत्॥ १३

सूतजी बोले—गन्ध, वर्ण, रस आदिसे भलीभाँति भूमिकी परीक्षा करके ईश्वरके आवाहनयोग्य उस स्थानको वितान (चाँदनी) आदिसे अलंकृत करके वहाँ एक हाथ मापका मण्डल बनाना चाहिये। उसके मध्यमें चूर्णोंके द्वारा पंचरत्नसमन्वित श्वेत या रक्तवर्ण गोल अष्टदल कमलकी रचना करनी चाहिये। तत्पश्चात् [उस कमलकी] कर्णिकामें परिवारसे युक्त, अति शोभामय परम कारण शिवका आवाहन करके अपने सामर्थ्यके अनुसार पूर्ण प्रयत्नसे उनका पूजन करना चाहिये॥ १—४॥

हे महामुने! कर्णिकाके कमलदलोंमें [अणिमा आदि आठ] सिद्धियाँ स्थित बतायी गयी हैं। वैराग्य-ज्ञानरूप उसका नाल है तथा धर्मरूप उसका मनोरम कन्द (मूल) है। वामा, ज्येष्ठा, रौद्री, काली, विकरणी, बलविकरणी, बलप्रमथिनी और सर्वभूतदमनी—क्रमशः ये आठ शक्तियाँ केसरोंमें स्थित हैं तथा महामायारूपा मनोन्मनी शिवासनरूप कर्णिकामें विराजमान हैं; उन-उन स्थानोंमें उनका ध्यान करना चाहिये। वामदेव आदिके साथ इन वामा आदि आठ शक्तियोंका तथा मध्यमें देवी मनोन्मनीके साथ मनोन्मन महादेवकी दाम्पत्यरूपसे प्रतिष्ठा करनी चाहिये॥ ५—८॥

सूर्य-चन्द्र-अग्निके सम्बन्धसे प्रणव नामक सूर्यतुल्य प्रभावाले शिवरूप तत्पुरुषका [कमलके] पूर्व पत्रमें न्यास करना चाहिये। नीलांजनसदृश अघोरका दक्षिण पत्रमें, जपाकुसुमके समान वर्णवाले वामदेव नामक शिवका उत्तर पत्रमें, गोदुग्धके समान धवल सद्योजातका पश्चिम पत्रमें और शुद्ध स्फटिकके समान कान्तिवाले ईशानका कमलकी कर्णिकामें न्यास करना चाहिये॥ ९—११॥

चन्द्रमण्डलसङ्काशाय हृदयाय नमः—इस मन्त्रसे अग्निकोणके दलमें, **धूम्रवर्चसे शिरसे नमः**—इस मन्त्रसे ईशानकोणके दलमें, **रक्ताभाय शिखायै नमः**—इस मन्त्रसे नैर्ऋत्यकोणके दलमें और **अञ्जनाभाय**

अस्त्रायाग्निशिखाभाय इति दिक्षु प्रविन्यसेत्।
नेत्रेभ्यश्चेति चैशान्यां पिङ्गलेभ्यः प्रविन्यसेत्॥ १४
शिवं सदाशिवं देवं महेश्वरमतः परम्।
रुद्रं विष्णुं विरिञ्चिं च सृष्टिन्यायेन भावयेत्॥ १५
शिवाय रुद्ररूपाय शान्त्यतीताय शम्भवे।
शान्ताय शान्तदैत्याय नमश्चन्द्रमसे तथा॥ १६
वेद्याय विद्याधाराय वह्नये वह्निवर्चसे।
कालायै च प्रतिष्ठायै तारकायान्तकाय च॥ १७
निवृत्त्यै धनदेवाय धारायै धारणाय च।
मन्त्रैरेतैर्महाभूतविग्रहं च सदाशिवम्॥ १८
ईशानमुकुटं देवं पुरुषास्यं पुरातनम्।
अघोरहृदयं हृष्टं वामगुह्यं महेश्वरम्॥ १९
सद्यमूर्तिं स्मरेद्देवं सदसद्व्यक्तिकारणम्।
पञ्चवक्त्रं दशभुजमष्टत्रिंशत्कलामयम्॥ २०
सद्यमष्टप्रकारेण प्रभिद्य च कलामयम्।
वामं त्रयोदशविधैर्विभिद्य विततं प्रभुम्॥ २१
अघोरमष्टधा कृत्वा कलारूपेण संस्थितम्।
पुरुषं च चतुर्धा वै विभज्य च कलामयम्॥ २२
ईशानं पञ्चधा कृत्वा पञ्चमूर्त्या व्यवस्थितम्।
हंसहंसेति मन्त्रेण शिवभक्त्या समन्वितम्॥ २३
ओङ्कारमात्रमोङ्कारमकारं समरूपिणम्।
आ ई ऊ ए तथा अम्बानुक्रमेणात्मरूपिणम्॥ २४
प्रधानसहितं देवं प्रलयोत्पत्तिवर्जितम्।
अणोरणीयां समजं महतोऽपि महत्तमम्॥ २५
उर्ध्वरेतसमीशानं विरूपाक्षमुमापतिम्।
सहस्रशिरसं देवं सहस्राक्षं सनातनम्॥ २६
सहस्रहस्तचरणं नादान्तं नादविग्रहम्।
खद्योतसदृशाकारं चन्द्ररेखाकृतिं प्रभुम्॥ २७
द्वादशान्ते भ्रुवोर्मध्ये तालुमध्ये गले क्रमात्।
हृद्देशेऽवस्थितं देवं स्वानन्दममृतं शिवम्॥ २८

कवचाय नमः—इस मन्त्रसे वायव्यकोणके दलमें न्यास करना चाहिये। **अग्निशिखाभाय अस्त्राय नमः**—इस मन्त्रसे [ऊर्ध्व आदि] दिशाओंमें न्यास करना चाहिये और **पिङ्गलेभ्यो नेत्रेभ्यो नमः**—इस मन्त्रसे ईशान दिशामें न्यास करना चाहिये। तदनन्तर शिव सदाशिव देव महेश्वर रुद्र, विष्णु और विरिंचि (ब्रह्मा)-की सृष्टिके सृजन, पालन और संहारके क्रमसे भावना करनी चाहिये॥ १२—१५॥

शिवाय रुद्ररूपाय शान्त्यतीताय शम्भवे। शान्ताय शान्तदैत्याय नमश्चन्द्रमसे तथा॥ वेद्याय विद्याधाराय वह्नये वह्निवर्चसे। कालायै च प्रतिष्ठायै तारकायान्तकाय च॥ निवृत्त्यै धनदेवाय धारायै धारणाय च—इन [पाँच] मन्त्रोंसे ईशानरूप मुकुट, तत्पुरुषरूप मुख, अघोररूप हृदय, वामदेवरूप गुह्यदेश तथा सद्योजातरूप सम्पूर्ण विग्रहवाले, सत्-असत्की अभिव्यक्तिके कारणभूत, पुरातन, प्रसन्न तथा आकाश आदि पंचमहाभूतके विग्रहवाले महेश्वर सदाशिवका स्मरण करना चाहिये, जो पाँच मुख तथा दस भुजाओंसे सुशोभित और अड़तीस कलाओंवाले हैं। कलामय सद्योजातका आठ प्रकारसे विभाग करके, महाप्रभु वामदेवका तेरह भेदोंसे विभाग करके, कलारूपमें स्थित अघोरका आठ प्रकारसे विभाग करके, कलामय तत्पुरुषका चार प्रकारसे विभाग करके और पाँच मूर्तियोंमें व्यवस्थित ईशानका पाँच प्रकारसे विभाग करके उनका ध्यान करना चाहिये। **हंसहंसाय विद्महे परमहंसाय धीमहि। तन्नो हंसः प्रचोदयात्**—इस हंसगायत्रीमन्त्रसे शिवभक्तिसे युक्त, ब्रह्मरूप, प्रणवरूप, अकाररूप, ब्रह्मतुल्यरूपवाले, आ-ई-ऊ-ए अर्थात् क्रमसे देवी-गणेश-सूर्य-विष्णुस्वरूप, प्रकृतियुक्त, उत्पत्ति-प्रलयसे रहित, सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म, अजन्मा, महान्‌से भी महान्, ऊर्ध्वरेता, विरूपाक्ष, उमापति, हजार सिरोंवाले, हजार नेत्रोंवाले, हजार हाथ तथा चरणोंवाले, सनातन, नादान्त (प्रणवरूप), नादप्रतिपाद्य विग्रहवाले, सूर्यके समान आकारवाले, चन्द्ररेखासे युक्त विग्रहवाले, मूर्धा-भ्रूमध्य-तालुमध्य-कण्ठ तथा हृदयमें क्रमसे विराजमान, अपने आनन्दमें मग्न, अमृतस्वरूप,

विद्युद्वलयसङ्काशं विद्युत्कोटिसमप्रभम्।
श्यामं रक्तं कलाकारं शक्तित्रयकृतासनम्॥ २९

सदाशिवं स्मरेद्देवं तत्त्वत्रयसमन्वितम्।
विद्यामूर्तिमयं देवं पूजयेच्च यथाक्रमात्॥ ३०

लोकपालांस्तथास्त्रेण पूर्वाद्यान् पूजयेत्पृथक्।
चरुं च विधिनासाद्य शिवाय विनिवेदयेत्॥ ३१

अर्धं शिवाय दत्त्वैव शेषार्धेन तु होमयेत्।
अघोरेणाथ शिष्याय दापयेद्भोक्तुमुत्तमम्॥ ३२

उपस्पृश्य शुचिर्भूत्वा पुरुषं विधिना यजेत्।
पञ्चगव्यं ततः प्राश्य ईशानेनाभिमन्त्रितम्॥ ३३

वामदेवेन भस्माङ्गी भस्मनोद्धूलयेत्क्रमात्।
कर्णयोश्च जपेद्देवीं गायत्रीं रुद्रदेवताम्॥ ३४

ससूत्रं सपिधानं च वस्त्रयुग्मेन वेष्टितम्।
तत्पूर्वं हेमरत्नौघैर्वासितं वै हिरण्मयम्॥ ३५

कलशान् विन्यसेत्पञ्च पञ्चभिर्ब्राह्मणैस्ततः।
होमं च चरुणा कुर्याद्यथाविभवविस्तरम्॥ ३६

शिष्यं च वासयेद्भक्तं दक्षिणे मण्डलस्य तु।
दर्भशय्यासमारूढं शिवध्यानपरायणम्॥ ३७

अघोरेण यथान्यायमष्टोत्तरशतं पुनः।
घृतेन हुत्वा दुःस्वप्नं प्रभाते शोधयेन्मलम्॥ ३८

एवं चोपोषितं शिष्यं स्नातं भूषितविग्रहम्।
नववस्त्रोत्तरीयं च सोष्णीषं कृतमङ्गलम्॥ ३९

दुकूलाद्येन वस्त्रेण नेत्रं बद्ध्वा प्रवेशयेत्।
सुवर्णपुष्पसम्मिश्रं यथाविभवविस्तरम्॥ ४०

ईशानेन च मन्त्रेण कुर्यात्पुष्पाञ्जलिं प्रभोः।
प्रदक्षिणात्रयं कृत्वा रुद्राध्यायेन वा पुनः॥ ४१

कल्याणकारी, विद्युद्वलयसदृश, करोड़ों विद्युत्के समान प्रभावाले, श्यामरक्त वर्णवाले, गम्भीर आकारवाले, शक्तित्रय (तीनों शक्तियों)-पर विराजमान तीन तत्त्वोंसे युक्त तथा विद्यामूर्ति-स्वरूप भगवान् सदाशिव ईशानका इस प्रकार स्मरण करना चाहिये और यथाक्रमसे उनका पूजन करना चाहिये॥ २६—३०॥

तत्पश्चात् पूर्व आदि दिशाओंसे सम्बन्धित [इन्द्र आदि] लोकपालोंका अस्त्रमन्त्रसे अलग-अलग पूजन करना चाहिये। इसके बाद विधिपूर्वक चरु बनाकर उसका आधा भाग शिवको अर्पित करना चाहिये। शिवको निवेदित करनेके बाद शेष चरुके आधे भागसे हवन कर देना चाहिये। तदनन्तर बचे हुए उत्तम चरुको अघोर मन्त्रसे अभिमन्त्रित करके भक्षण करनेके लिये शिष्यको दिलाना चाहिये॥ ३१-३२॥

चरुका भक्षण करनेके अनन्तर आचमन करके शुद्ध होकर शिष्यको विधिपूर्वक तत्पुरुषका यजन करना चाहिये। तत्पश्चात् ईशान मन्त्रसे अभिमन्त्रित किये गये पंचगव्यका प्राशन करके वामदेवमन्त्रसे सर्वांगमें भस्म धारण करना चाहिये, गुरुको शिष्यके दोनों कानोंमें रुद्रदैवत्य गायत्री (रुद्रगायत्री)-का जप करना चाहिये। होमके पूर्व सूत्रयुक्त, आच्छादनयुक्त, दो वस्त्रोंसे घिरा हुआ तथा हेमरत्नोंसे अधिवासित जो सुवर्णमय अधिवासनमण्डल है, उसमें पाँच ब्रह्ममन्त्रोंसे पाँच कलशोंका स्थापन करना चाहिये। तत्पश्चात् अपने सामर्थ्यके अनुसार चरुसे होम करना चाहिये॥ ३३—३६॥

इसके बाद शिवध्यानपरायण भक्त शिष्यको मण्डलके दक्षिण भागमें कुशकी शैय्यापर शयन कराना चाहिये। पुनः प्रातःकाल होनेपर अघोरमन्त्रसे विधिपूर्वक घृतकी एक सौ आठ आहुति देकर दुःस्वप्नरूप मलका शोधन करे। इस प्रकार व्रती शिष्यको स्नान कराकर उसके शरीरको भूषित करके, उसे नवीन वस्त्र, उत्तरीय तथा पगड़ी धारण कराकर और उससे समस्त मंगलकृत्य सम्पन्न कराकर दुपट्टा आदिसे उसके नेत्रको बाँधकर उसे मण्डलमें प्रवेश कराये। शिष्य अपने धनसामर्थ्यके अनुसार सुवर्णयुक्त पुष्प अंजलिमें लेकर ईशानमन्त्रसे

केवलं प्रणवेनाथ शिवध्यानपरायणः।
ध्यात्वा तु देवदेवेशमीशाने सङ्क्षिपेत्स्वयम्॥ ४२

यस्मिन् मन्त्रे पतेत्पुष्पं तन्मन्त्रस्तस्य सिध्यति।
शिवाम्भसा तु संस्पृश्य अघोरेण च भस्मना॥ ४३

शिष्यमूर्धनि विन्यस्य गन्धाद्यैः शिष्यमर्चयेत्।
वारुणं परमं श्रेष्ठं द्वारं वै सर्ववर्णिनाम्॥ ४४

क्षत्रियाणां विशेषेण द्वारं वै पश्चिमं स्मृतम्।
नेत्रावरणमुन्मुच्य मण्डलं दर्शयेत्ततः॥ ४५

कुशासने तु संस्थाप्य दक्षिणामूर्तिमास्थितः।
तत्त्वशुद्धिं ततः कुर्यात्पञ्चतत्त्वप्रकारतः॥ ४६

निवृत्त्या रुद्रपर्यन्तमण्डमण्डोद्भवात्मज।
प्रतिष्ठया तदूर्ध्वं च यावदव्यक्तगोचरम्॥ ४७

विश्वेश्वरान्तं वै विद्या कलामात्रेण सुव्रत।
तदूर्ध्वमार्गं संशोध्य शिवभक्त्या शिवं नयेत्॥ ४८

समर्चनाय तत्त्वस्य तस्य भोगेश्वरस्य वै।
तत्त्वत्रयप्रभेदेन चतुर्भिरुत वा तथा॥ ४९

होमयेदङ्गमन्त्रेण शान्त्यतीतं सदाशिवम्।
सद्यादिभिस्तु शान्त्यन्तं चतुर्भिः कलया पृथक्॥ ५०

शान्त्यतीतं मुनिश्रेष्ठ ईशानेनाथवा पुनः।
प्रत्येकमष्टोत्तरशतं दिशाहोमं तु कारयेत्॥ ५१

ईशान्यां पञ्चमेनाथ प्रधानं परिगीयते।
समिदाज्यचरूल्लाँजान् सर्षपांश्च यवांस्तिलान्॥ ५२

द्रव्याणि सप्त होतव्यं स्वाहान्तं प्रणवादिकम्।
तेषां पूर्णाहुतिर्विप्र ईशानेन विधीयते॥ ५३

सहंसेन यथान्यायं प्रणवाद्येन सुव्रत।
अघोरेण च मन्त्रेण प्रायश्चित्तं विधीयते॥ ५४

प्रभुको पुष्पांजलि अर्पित करे और पुनः रुद्राध्याय अथवा केवल प्रणवका उच्चारण करता हुआ शिवके ध्यानमें लीन होकर मण्डलकी तीन प्रदक्षिणा करके देवदेवेशका ध्यान करके पुष्पको ईशान दिशामें स्वयं प्रक्षिप्त कर दे। पुष्प जिस मन्त्रपर गिरे, वही मन्त्र उसके लिये सिद्ध हो जाता है। तदनन्तर मंगल जल तथा अघोरमन्त्रसे अभिमन्त्रित भस्मसे शिष्यका स्पर्श करके शिष्यके सिरपर अपना हाथ रखकर गुरुको गन्ध आदि उपचारोंसे शिष्यका पूजन करना चाहिये॥ ३७—४३ $^{1}/_{2}$ ॥

वरुणसम्बन्धी पश्चिम द्वार प्रवेशके लिये सभी वर्णोंके लिये श्रेष्ठ है और यह विशेष रूपसे क्षत्रियोंके लिये अत्युत्तम कहा गया है। प्रवेशके अनन्तर शिष्यके नेत्रका वस्त्रावरण हटाकर उसे मण्डल दिखाना चाहिये। इसके बाद शिष्यको कुशासनपर बैठाकर दक्षिणामूर्ति शिवका आश्रय लेकर पंचतत्त्वप्रकारसे तत्त्वशुद्धि करनी चाहिये। हे सनत्कुमार! हे सुव्रत! क्रमसे पृथ्वी आदि पंचमहाभूतोंसे लेकर अहंकारपर्यन्त अण्डकी निवृत्तिसे, उस अहंकारसे भी ऊपर अव्यक्तगोचर प्रकृतिपर्यन्त स्थितिके द्वारा तथा ज्ञानकलासे पुरुषतकका ज्ञान करके उससे भी ऊपर परम शिवकी प्राप्तिके मार्गको शिवभक्तिके द्वारा आवरणरहित करके शिष्यको तुरीय शिवतक पहुँचा दे। तत्पश्चात् उन योगेश्वर तत्त्वरूप शिवके समर्चनके लिये प्रकृति, पुरुष, ईश्वर—इन तत्त्वत्रय अथवा अहंकार आदि चार तत्त्वोंके क्रमसे शान्त्यतीत कलामें स्थित सदाशिवके निमित्त ईशानमन्त्रसे होम कर दे, साथ ही पृथक् गणनासे सद्योजात आदि चार मन्त्रोंके द्वारा शान्त्यन्त शिवके लिये होम कर दे; हे मुनिश्रेष्ठ! इसके बाद ईशानमन्त्रसे परम शिवको एक सौ आठ आहुति देकर ऋत्विजोंके द्वारा एक सौ आठ आहुतिसे दिग्देवताहोम कराना चाहिये॥ ४४—५१ ॥

ईशान दिशामें पाँचवें ईशानमन्त्रसे किया गया याग प्रधान याग कहा जाता है। मन्त्रके आदिमें प्रणव तथा अन्तमें स्वाहा लगाकर समिधा, घृत, चरु, लाजा (लावा), सरसों, यव, तिल—इन सात द्रव्योंका हवन करना चाहिये। हे विप्र! उनकी पूर्णाहुति ईशानमन्त्रसे की जाती है। हे सुव्रत! प्रणवयुक्त हंसगायत्रीमन्त्रसहित

जयादिस्विष्टपर्यन्तमग्निकार्यं क्रमेण तु।
गुणसंख्याप्रकारेण प्रधानेन च योजयेत्॥ ५५

भूतानि ब्रह्मभिर्वापि मौनी बीजादिभिस्तथा।
अथ प्रधानमात्रेण प्राणापानौ नियम्य च॥ ५६

षष्ठेन भेदयेदात्मप्रणवान्तं कुलाकुलम्।
अन्योऽन्यमुपसंहृत्य ब्रह्माणं केशवं हरम्॥ ५७

रुद्रे रुद्रं तमीशाने शिवे देवं महेश्वरम्।
तस्मात्सृष्टिप्रकारेण भावयेद्भवनाशनम्॥ ५८

स्थाप्यात्मानममुं जीवं ताडनं द्वारदर्शनम्।
दीपनं ग्रहणं चैव बन्धनं पूजया सह॥ ५९

अमृतीकरणं चैव कारयेद्विधिपूर्वकम्।
षष्ठान्तं सद्यसंयुक्तं तृतीयेन समन्वितम्॥ ६०

फडन्तं संहृतिः प्रोक्ता पञ्चभूतप्रकारतः।
सद्याद्यषष्ठसहितं शिखान्तं सफडन्तकम्॥ ६१

ताडनं कथितं द्वारं तत्त्वानामपि योगिनः।
प्रधानं सम्पुटीकृत्य तृतीयेन च दीपनम्॥ ६२

आद्येन सम्पुटीकृत्य प्रधानं ग्रहणं स्मृतम्।
प्रधानं प्रथमेनैव सम्पुटीकृत्य पूर्ववत्॥ ६३

बन्धनं परिपूर्णेन प्लावनं चामृतेन च।
शान्त्यतीता ततः शान्तिर्विद्या नाम कलामला॥ ६४

प्रतिष्ठा च निवृत्तिश्च कलासङ्क्रमणं स्मृता।
तत्त्ववर्णकलायुक्तं भुवनेन यथाक्रमम्॥ ६५

मन्त्रैः पादैः स्तवं कुर्याद्विशोध्य च यथाविधि।
आद्येन योनिबीजेन कल्पयित्वा च पूर्ववत्॥ ६६

अघोरमन्त्रसे विधिपूर्वक प्रायश्चित्त किया जाता है। जया, अभ्यातान आदिसे लेकर स्विष्टकृत्-होमपर्यन्त अग्निकार्यको तीन प्रकारसे पूर्वोक्त प्रधान होमके साथ युक्त कर देना चाहिये॥ ५२—५५॥

तत्पश्चात् गुरुको चाहिये कि मौन होकर बीजस्वरूप [सद्योजात आदि] वेदमन्त्रोंसे पृथ्वी आदि पंचमहाभूतोंका तथा केवल ईशानमन्त्रसे प्राण-अपान वायुका निरोध करके छठे '**नमो हिरण्यबाहवे०**' इस मन्त्रसे आत्मवाचक प्रणवके अन्तरूप नादसमुदायसे व्याप्त ब्रह्मरन्ध्रका भेदन करे। तत्पश्चात् ब्रह्मा, केशव तथा रुद्रको अन्योन्य रूपसे उपसंहृत करके अर्थात् ब्रह्माको केशवमें, केशवको हरमें विलीन करके संहारमूर्ति हरको रुद्रमें, उन रुद्रको ईशानमें और उन महेश्वर ईशानको शिवमें उपसंहृत करके पुनः सृष्टिक्रमसे भवनाशक रुद्रका चिन्तन करे॥ ५६—५८॥

इसके बाद शिष्यके जीवको रुद्रमें स्थापित करके ताड़न, द्वारदर्शन, दीपन, ग्रहण, पूजासहित बन्धन और अमृतीकरण विधिपूर्वक कराना चाहिये। अघोरमन्त्रके आदिमें सद्योजातमन्त्र और अन्तमें षष्ठ मन्त्र—'**नमो हिरण्यबाहवे०**' तथा सबके अन्तमें 'फट्' शब्द प्रयुक्त करके पृथ्वी आदि पंचभूतोंके प्रकारसे संहृति कही गयी है। सद्योजात आदिमें, इसके बाद '**नमो हिरण्यबाहवे०**' और पुनः अन्तमें 'शिखा' तथा 'फट्' लगा हुआ मन्त्र दीक्षायोगीके लिये ताड़न तथा तत्त्वोंका द्वारदर्शन कहा गया है; अघोरमन्त्रसे सम्पुटित करके प्रधान ईशानमन्त्रको 'दीपन' कहा गया है। सद्योजातमन्त्रसे सम्पुटित करके ईशानमन्त्रको ग्रहण तथा उसी ग्रहणकी ही तरह सद्योजात मन्त्रसे सम्पुटित करके ईशानमन्त्रको बन्धन भी कहा गया है और समग्र त्रियम्बकमन्त्रसे प्लावन अर्थात् अमृतीकरण बताया गया है॥ ५९—६३ $^{1}/_{2}$॥

शान्त्यतीता, प्रतिष्ठा, अमला, विद्या, शान्ति तथा निवृत्ति—ये कलाएँ कही गयी हैं। इनका यथाक्रम परस्पर संक्रमण करके तत्त्व, वर्ण, कला, भुवन, मन्त्र और पद—इन षडध्वोंका शोधन करके और पुनः प्रणव तथा योनिबीज (ह्रीं)-से सम्पुटित करके शिवप्रतिपादक

पूजासम्प्रोक्षणं विद्धि ताडनं हरणं तथा।
संहतस्य च संयोगं विक्षेपं च यथाक्रमम्॥ ६७

अर्चना च तथा गर्भधारणं जननं पुनः।
अधिकारो भवेद्धानोर्लयश्चैव विशेषतः॥ ६८

उत्तमाद्यं तथान्त्येन योनिबीजेन सुव्रत।
उद्धारे प्रोक्षणे चैव ताडने च महामुने॥ ६९

अघोरेण फडन्तेन संसृतिश्च न संशयः।
प्रतितत्त्वं क्रमो ह्येष योगमार्गेण सुव्रत॥ ७०

मुष्टिना चैव यावच्च तावत्कालं नयेत्क्रमात्।
विषुवेण तु योगेन निवृत्त्यादि शिवान्तिकम्॥ ७१

एकत्र समतां याति नान्यथा तु पृथक् पृथक्।
नासाग्रे द्वादशान्तेन पृष्ठेन सह योगिनाम्॥ ७२

क्षन्तव्यमिति विप्रेन्द्र देवदेवस्य शासनम्।
हेमराजतताम्राद्यैर्विधिना कल्पितेन च॥ ७३

सकूर्चेन सवस्त्रेण तन्तुना वेष्टितेन च।
तीर्थाम्बुपूरितेनैव रत्नगर्भेण सुव्रत॥ ७४

संहितामन्त्रितेनैव रुद्राध्यायस्तुतेन च।
सेचयेच्च ततः शिष्यं शिवभक्तं च धार्मिकम्॥ ७५

सोऽपि शिष्यः शिवस्याग्रे गुरोरग्रे च सादरम्।
वह्नेश्च दीक्षां कुर्वीत दीक्षितश्च तथाचरेत्॥ ७६

वरं प्राणपरित्यागश्छेदनं शिरसोऽपि वा।
न त्वनभ्यर्च्य भुञ्जीयाद्भगवन्तं सदाशिवम्॥ ७७

मन्त्रोंके द्वारा यथाविधि अर्थका विचार करके स्तवन करना चाहिये॥ ६४—६६॥

पूजासम्प्रोक्षण, ताड़न, हरण, अत्यन्त शुद्ध मनका संयोग, यथाक्रम विक्षेप, अर्चना, गर्भधारण (वागीशीके गर्भमें स्थापन), पुनर्जनन, भानुका अधिकार अर्थात् तत्सदृश ज्ञानका निवारक रूप और विशेषरूपसे अविद्याका नाश होता है—ऐसा जानिये॥ ६७-६८॥

हे सुव्रत! हे महामुने! उद्धार, प्रोक्षण तथा ताड़नमें प्रारम्भमें उत्तम ईशानमन्त्र और इसके अन्तमें योनिबीजके साथ मन्त्रका प्रयोग करना चाहिये और अन्तमें 'फट्'-से युक्त अघोरमन्त्रके द्वारा संसृति होती है; इसमें सन्देह नहीं है। हे सुव्रत! प्रत्येक तत्त्वके लिये योगमार्गके द्वारा यही क्रम निर्धारित है॥ ६९-७०॥

जबतक मुष्टिसदृश प्राणायाममें स्थित रहे, उतने कालको विषुवयोगके द्वारा क्रमसे निवृत्तिकलासे लेकर शिवाकलापर्यन्त व्यतीत करे। साधक नासिकाके अग्रभागपर दृष्टिको स्थिर करके योगियोंके चरमावयवभूत मन्त्रसे द्वादशान्त (परम तत्त्व शिव)-के साथ समताको प्राप्त होता है; पृथक्-पृथक् स्थानोंपर दृष्टि रखनेसे नहीं। हे विप्रेन्द्र! दीक्षितको सुख-दुःख आदि द्वन्द्वसमूहोंको सहना चाहिये—ऐसा देवदेव शिवका आदेश है॥ ७१-७२$^1/_2$॥

हे सुव्रत! सुवर्ण, चाँदी अथवा ताँबे आदि धातुओंसे निर्मित, कूर्चयुक्त, वस्त्र तथा तन्तुसे वेष्टित, तीर्थजलसे परिपूर्ण, रत्नप्रक्षिप्त, संहिता मन्त्रसे अभिमन्त्रित, रुद्राध्यायसे स्तुत कलशके जलसे पवमान आदि मन्त्रोंके द्वारा धार्मिक शिवभक्त शिष्यका अभिषेक करना चाहिये॥ ७३—७५॥

वह [अभिषिक्त] शिष्य भी शिव, गुरु तथा अग्निके समक्ष आदरपूर्वक दीक्षा ग्रहण करे और दीक्षित होकर बताये जानेवाले नियमोंका पालन करे। चाहे प्राण चला जाय अथवा सिर कट जाय, किंतु भगवान् सदाशिवका पूजन किये बिना भोजन नहीं ग्रहण करना चाहिये। इस प्रकार दीक्षा प्राप्त करनी चाहिये और यथाविधि शिवपूजन करना चाहिये। तीनों कालोंमें

एवं दीक्षा प्रकर्तव्या पूजा चैव यथाक्रमम्।
त्रिकालमेककालं वा पूजयेत्परमेश्वरम्॥ ७८

अग्निहोत्रं च वेदाश्च यज्ञाश्च बहुदक्षिणाः।
शिवलिङ्गार्चनस्यैते कलांशेनापि नो समाः॥ ७९

सदा यजति यज्ञेन सदा दानं प्रयच्छति।
सदा च वायुभक्षश्च सकृद्योऽभ्यर्चयेच्छिवम्॥ ८०

एककालं द्विकालं वा त्रिकालं नित्यमेव वा।
येऽर्चयन्ति महादेवं ते रुद्रा नात्र संशयः॥ ८१

नारुद्रस्तु स्पृशेद्रुद्रं नारुद्रो रुद्रमर्चयेत्।
नारुद्रः कीर्तयेद्रुद्रं नारुद्रो रुद्रमाप्नुयात्॥ ८२

एवं सङ्क्षेपतः प्रोक्तो ह्यधिकारिविधिक्रमः।
शिवार्चनार्थं धर्मार्थकाममोक्षफलप्रदः॥ ८३

(प्रातः, मध्याह्न, सायं) अथवा एक ही समय परमेश्वर शिवकी पूजा करनी चाहिये॥ ७६—७८॥

अग्निहोत्र, समस्त वेद तथा बड़ी-बड़ी दक्षिणाओंवाले यज्ञ—ये सब शिवलिङ्गके अर्चनकी कलाके अंशके भी तुल्य नहीं हैं। जो एक बार शिवका अर्चन कर लेता है, वह मानो सदा यज्ञ करता है, सदा दान देता है और सदा वायुभक्षणरूप तपस्या करता है। जो लोग प्रतिदिन एक काल, दोनों कालों अथवा तीनों कालोंमें महादेवका पूजन करते हैं, वे रुद्ररूप ही हैं, इसमें सन्देह नहीं है। जो रुद्ररूप नहीं है; उसे रुद्रका स्पर्श नहीं करना चाहिये; जो रुद्ररूप नहीं है, उसे रुद्रकी पूजा नहीं करनी चाहिये और जो रुद्ररूप नहीं है, उसे रुद्रका नामकीर्तन नहीं करना चाहिये। जो रुद्ररूप नहीं है, वह रुद्रको नहीं प्राप्त कर सकता। [हे सनत्कुमार!] इस प्रकार मैंने [आपसे] संक्षेपमें शिवकी पूजाके लिये अधिकारी होने तथा उसकी विधिका क्रम कह दिया, जो धर्म, अर्थ, काम और मोक्षको प्रदान करनेवाला है॥ ७९—८३॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे उत्तरभागे दीक्षाविधिर्नामैकविंशतितमोऽध्यायः॥ २१॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत उत्तरभागमें 'दीक्षाविधि' नामक इक्कीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २१॥

बाईसवाँ अध्याय

शिवदीक्षा-प्रकरणमें सौरस्नानविधि तथा भास्करार्चाका वर्णन

शैलादिरुवाच

स्नानयागादिकर्माणि कृत्वा वै भास्करस्य च।
शिवस्नानं ततः कुर्याद्भस्मस्नानं शिवार्चनम्॥ १

षष्ठेन मृदमादाय भक्त्या भूमौ न्यसेन्मृदम्।
द्वितीयेन तथाभ्युक्ष्य तृतीयेन च शोधयेत्॥ २

चतुर्थेनैव विभजेन्मलमेकेन शोधयेत्।
स्नात्वा षष्ठेन तच्छेषां मृदं हस्तगतां पुनः॥ ३

त्रिधा विभज्य सर्वं च चतुर्भिर्मध्यमं पुनः।
षष्ठेन सप्तवाराणि वामं मूलेन चालभेत्।
दशवारं च षष्ठेन दिशो बन्धः प्रकीर्तितः॥ ४

शैलादि बोले—[हे सनत्कुमार!] सूर्यस्नान-याग आदि कर्म करके ही शिवस्नान तदनन्तर भस्मस्नान और शिवार्चन करना चाहिये॥ १॥

छठे मन्त्र (ॐ तपः)-से मृत्तिका लेकर भक्तिपूर्वक भूमिपर स्थापित करे, दूसरे मन्त्र (ॐ भुवः)-से जलसे अभ्युक्षण करके तीसरे मन्त्र (ॐ स्वः)-से उसका शोधन करे। तत्पश्चात् चौथे मन्त्र (ॐ महः)-से मृत्तिकाका भाग करे और प्रथम मन्त्र (ॐ भूः)-से शरीरके मलका शोधन करे। तब छठे मन्त्र (ॐ तपः)-से स्नान करके पुनः शेष मृत्तिकाको हाथमें लेकर (ॐ भूः) आदि चारों मन्त्रोंसे उसके तीन भाग करके पुनः मध्य भागको छठें मन्त्रसे सात बार

वामेन तीर्थं सव्येन शरीरमनुलिप्य च।
स्नात्वा सर्वैः स्मरन् भानुमभिषेकं समाचरेत्॥ ५

शृङ्गेण पर्णपुटकैः पालाशेन दलेन वा।
सौरैरेभिश्च विविधैः सर्वसिद्धिकरैः शुभैः॥ ६

सौराणि च प्रवक्ष्यामि वाष्कलाद्यानि सुव्रत।
अङ्गानि सर्वदेवेषु सारभूतानि सर्वतः॥ ७

ॐ भूः ॐ भुवः ॐ स्वः ॐ महः ॐ जनः ॐ तपः ॐ सत्यम् ॐ ऋतम् ॐ ब्रह्म
नवाक्षरमयं मन्त्रं बाष्कलं परिकीर्तितम्।
न क्षरतीति लोकानि ऋतमक्षरमुच्यते।
सत्यमक्षरमित्युक्तं प्रणवादिनमोऽन्तकम्॥ ८

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि।
धियो यो नः प्रचोदयात्।
ॐ नमः सूर्याय खखोल्काय नमः॥ ९

मूलमन्त्रमिदं प्रोक्तं भास्करस्य महात्मनः।
नवाक्षरेण दीप्तास्यं मूलमन्त्रेण भास्करम्॥ १०

पूजयेदङ्गमन्त्राणि कथयामि यथाक्रमम्।
वेदादिभिः प्रभूताद्यं प्रणवेन च मध्यमम्॥ ११

ॐ भूः ब्रह्महृदयाय ॐ भुवः विष्णुशिरसे ॐ स्वः रुद्रशिखायै ॐ भूर्भुवः स्वःज्वालामालिनीशिखायै ॐ महः महेश्वराय कवचाय ॐ जनः शिवाय नेत्रेभ्यः ॐ तपः तापकाय अस्त्राय फट्।

मन्त्राणि कथितान्येवं सौराणि विविधानि च।
एतैः शृङ्गादिभिः पात्रैः स्वात्मानमभिषेचयेत्॥ १२

ताम्रकुम्भेन वा विप्रः क्षत्रियो वैश्य एव च।
सकुशेन सपुष्पेण मन्त्रैः सर्वैः समाहितः॥ १३

रक्तवस्त्रपरीधानः स्वाचामेद्विधिपूर्वकम्।
सूर्यश्चेति दिवारात्रौ चाग्निश्चेति द्विजोत्तमः॥ १४

अभिमन्त्रित करके मूल मन्त्रसे बायें हाथका स्पर्श करे। दस बार छठे मन्त्रके उच्चारणसे दिग्बन्ध करना बताया गया है॥ २—४॥

बायें हाथसे तीर्थ (जल)-का स्पर्श करके दायें हाथसे शरीरका अनुलेप करके सभी मन्त्रोंसे पुनः स्नान करनेके बाद सूर्यका स्मरण करते हुए शृंगसे, पत्तोंकी दोनियोंसे अथवा पलाशके पत्तेसे समस्त सिद्धियाँ प्रदान करनेवाले तथा मंगलकारी विविध सौरमन्त्रोंसे अभिषेक करना चाहिये। हे सुव्रत! अब मैं सभी देवमन्त्रोंमें सारस्वरूप सूर्यसम्बन्धी बाष्कल आदि तथा अंगमन्त्रोंको सम्यक् प्रकारसे बताऊँगा॥ ५—७॥

ॐ भूः ॐ भुवः ॐ स्वः ॐ महः ॐ जनः ॐ तपः ॐ सत्यम् ॐ ऋतम् ॐ ब्रह्म—यह नवाक्षरमय मन्त्र बाष्कल मन्त्र कहा गया है। भूः आदि सातों लोक प्रलयपर्यन्त नष्ट नहीं होते, अतः उन्हें ऋत [अक्षर] कहा जाता है। सत्य (ब्रह्म) अक्षर (नाशशून्य) है, इस प्रकार प्रणवादि नमःपर्यन्त बाष्कल मन्त्र है॥ ८॥

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि॥ धियो यो नः प्रचोदयात्॥ ॐ नमः सूर्याय खखोल्काय नमः—यह मन्त्र परमात्मा सूर्यका मूल मन्त्र कहा गया है। नवाक्षर मन्त्रसे तथा मूल मन्त्रसे तेजोमुख सूर्यकी पूजा करनी चाहिये। अब मैं क्रमसे अंगमन्त्र बता रहा हूँ। अंगमन्त्र आदिमें प्रणव तथा मध्यमें व्याहृतियोंसे युक्त है। **ॐ भूः ब्रह्महृदयाय, ॐ भुवः विष्णुशिरसे, ॐ स्वः रुद्रशिखायै, ॐ भूर्भुवः स्वः ज्वालामालिनीशिखायै, ॐ महः महेश्वराय कवचाय, ॐ जनः शिवाय नेत्रेभ्यः, ॐ तपः तापकाय अस्त्राय फट्**—ये विविध सौरमन्त्र कहे गये हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय अथवा वैश्यको समाहित होकर शृंग आदि पात्रोंसे अथवा कुश तथा पुष्पयुक्त ताम्रकुम्भसे इन सभी मन्त्रोंके द्वारा अपना अभिषेक करना चाहिये॥ ९—१३॥

इसके बाद श्रेष्ठ द्विजको चाहिये कि रक्तवर्णका

आपः पुनन्तु मध्याह्ने मन्त्राचमनमुच्यते।
षष्ठेन शुद्धिं कृत्वैव जपेदाद्यमनुत्तमम्॥ १५
वौषडन्तं तथा मूलं नवाक्षरमनुत्तमम्।
करशाखां तथाङ्गुष्ठमध्यमानामिकां न्यसेत्॥ १६
तले च तर्जन्यङ्गुष्ठं मुष्टिभागानि विन्यसेत्।
नवाक्षरमयं देहं कृत्वाङ्गैरपि पावितम्॥ १७
सूर्योऽहमिति सञ्चिन्त्य मन्त्रैरेतैर्यथाक्रमम्।
वामहस्तगतैरद्भिर्गन्धसिद्धार्थकान्वितैः॥ १८
कुशपुञ्जेन चाभ्युक्ष्य मूलाग्रैरष्टधा स्थितैः।
आपो हिष्ठादिभिश्चैव शेषमाघ्राय वै जलम्॥ १९
वामनासापुटेनैव देहे सम्भावयेच्छिवम्।
अर्घ्यमादाय देहस्थं सव्यनासापुटेन च॥ २०
कृष्णवर्णेन बाह्यस्थं भावयेच्च शिलागतम्।
तर्पयेत्सर्वदेवेभ्य ऋषिभ्यश्च विशेषतः॥ २१
भूतेभ्यश्च पितृभ्यश्च विधिनार्घ्यं च दापयेत्।
व्यापिनीं च परां ज्योत्स्नां सन्ध्यां सम्यगुपासयेत्॥ २२
प्रातर्मध्याह्नसायाह्ने अर्घ्यं चैव निवेदयेत्।
रक्तचन्दनतोयेन हस्तमात्रेण मण्डलम्॥ २३
सुवृत्तं कल्पयेद्भूमौ प्रार्थयेत द्विजोत्तमाः।
प्राङ्मुखस्ताम्रपात्रं च सगन्धं प्रस्थपूरितम्॥ २४
पूरयेद्गन्धतोयेन रक्तचन्दनकेन च।
रक्तपुष्पैस्तिलैश्चैव कुशाक्षतसमन्वितैः॥ २५
दूर्वापामार्गगव्येन केवलेन धृतेन च।
आपूर्य मूलमन्त्रेण नवाक्षरमयेन च।
जानुभ्यां धरणीं गत्वा देवदेवं नमस्य च॥ २६

वस्त्र धारणकर प्रातःकाल '**सूर्यश्च०**'[१] इस मन्त्रसे, सायंकाल '**अग्निश्च०**'[२]—इस मन्त्रसे और मध्याह्नमें '**आपः पुनन्तु०**'[३]—इस मन्त्रसे विधिपूर्वक आचमन करे, यह आचमनका मन्त्र कहा जाता है। छठे मन्त्र (**ॐ तपः**) इस मन्त्रसे शुद्धि करके ही अतिश्रेष्ठ आद्य वौषडन्त मूलमन्त्रका तथा अनुत्तम नवाक्षर मन्त्रका जप करना चाहिये॥ १४-१५$^{1}/_{2}$॥

अंगुष्ठ, मध्यमा, अनामिका तथा कनिष्ठिकाका न्यास करे और तर्जनीमें अंगुष्ठका न्यास करे एवं करतल तथा करपृष्ठमें न्यास करे। इस प्रकार पवित्र देहको अंगमन्त्रोंके द्वारा नवाक्षरमय करके 'मैं सूर्य हूँ'—ऐसी भावनाकर यथाक्रम इन मन्त्रोंसे तथा '**आपो हि ष्ठा०**' आदि मन्त्रोंके द्वारा बायें हाथपर स्थित गन्ध-श्वेतसर्षपयुक्त जलसे मूल तथा अग्रभागसहित आठ कुशाके कूर्चसे अपनी देहपर मार्जन करके शेष जल बायें नासापुटसे सूँघकर अपने शरीरमें शिवकी भावना करनी चाहिये। आघ्राण जल (सूँघनेवाले जल)-को अन्तस्थ काले रंगके पापपुरुषके साथ बायें नासिकाछिद्रसे बाहर निकालकर शिलातलपर गिरा हुआ अनुभव करे। तदनन्तर सभी देवताओं, ऋषियों, भूतगणों तथा पितरोंका विधिपूर्वक तर्पण करे। इसके बाद प्रातः, मध्याह्न तथा सायंकालव्यापिनी परा, ज्योत्स्ना, सन्ध्याकी उपासना करे और भगवान् सूर्यको अर्घ्य प्रदान करे। हे श्रेष्ठ द्विजो! रक्तचन्दनके जलसे भूमिपर एक हाथ मापका सुन्दर तथा वृत्ताकार मण्डल बनाना चाहिये और प्रार्थना करनी चाहिये। पूर्वाभिमुख होकर प्रस्थ (सेरभर) परिमाणवाले गन्धयुक्त जलसे पूर्ण होनेवाले ताम्रपात्रको नवाक्षरमय मूलमन्त्रसे गन्धयुक्त जलसे पूर्ण करे और उसे रक्तचन्दन, रक्तपुष्प, तिल, कुश, अक्षत, दूर्वा, अपामार्ग, पंचगव्य अथवा केवल गोघृतसे भरकर दोनों

१. ॐ सूर्यश्च मा मन्युश्च मन्युपतयश्च मन्युकृतेभ्यः पापेभ्यो रक्षन्ताम्। यद्रात्र्या पापमकार्षं मनसा वाचा हस्ताभ्यां पद्भ्यामुदरेण शिश्ना रात्रिस्तदवलुम्पतु। यत्किञ्च दुरितं मयि इदमहमापोऽमृतयोनौ सूर्ये ज्योतिषि जुहोमि स्वाहा। (तै०आ० प्र० १०, अ० २५)

२. ॐ अग्निश्च मा मन्युश्च मन्युपतयश्च मन्युकृतेभ्यः पापेभ्यो रक्षन्ताम्। यदह्ना पापमकार्षं मनसा वाचा हस्ताभ्यां पद्भ्यामुदरेण शिश्ना अहस्तदवलुम्पतु। यत्किञ्च दुरितं मयि इदमहमापोऽमृतयोनौ सत्ये ज्योतिषि जुहोमि स्वाहा। (तै०आ० प्र० १०, अ० २४)

३. ॐ आपः पुनन्तु पृथिवीं पृथ्वी पूता पुनातु माम्। पुनन्तु ब्रह्मणस्पतिर्ब्रह्मपूता पुनातु माम्। यदुच्छिष्टमभोज्यं यद्वा दुश्चरितं मम। सर्वं पुनन्तु मामापोऽसतां च प्रतिग्रहꣳ स्वाहा। (तै०आ० प्र० १०, अ० २३)

कृत्वा शिरसि तत्पात्रमर्घ्यं मूलेन दापयेत्।
अश्वमेधायुतं कृत्वा यत्फलं परिकीर्तितम्॥ २७

तत्फलं लभते दत्त्वा सौरार्घ्यं सर्वसम्मतम्।
दत्त्वैवार्घ्यं यजेद्भक्त्या देवदेवं त्रियम्बकम्॥ २८

अथवा भास्करं चेष्ट्वा आग्नेयं स्नानमाचरेत्।
पूर्ववद्वै शिवस्नानं मन्त्रमात्रेण भेदितम्॥ २९

दन्तधावनपूर्वं च स्नानं सौरं च शाङ्करम्।
विघ्नेशं वरुणं चैव गुरुं तीर्थे समर्चयेत्॥ ३०

बद्ध्वा पद्मासनं तीर्थे तथा तीर्थं समर्चयेत्।
तीर्थं सङ्गृह्य विधिना पूजास्थानं प्रविश्य च॥ ३१

मार्गेणार्घ्यपवित्रेण तदाक्रम्य च पादुकम्।
पूर्ववत्करविन्यासं देहविन्यासमाचरेत्॥ ३२

अर्घ्यस्य सादनं चैव समासात्परिकीर्तितम्।
बद्ध्वा पद्मासनं योगी प्राणायामं समभ्यसेत्॥ ३३

रक्तपुष्पाणि सङ्गृह्य कमलाद्यानि भावयेत्।
आत्मनो दक्षिणे स्थाप्य जलभाण्डं च वामतः॥ ३४

ताम्रपात्राणि सौराणि सर्वकामार्थसिद्धये।
अर्घ्यपात्रं समादाय प्रक्षाल्य च यथाविधि॥ ३५

पूर्वोक्तेनाम्बुना सार्धं जलभाण्डे तथैव च।
अस्त्रोदकेन चैवार्घ्यमर्घ्यद्रव्यसमन्वितम्॥ ३६

संहितामन्त्रितं कृत्वा सम्पूज्य प्रथमेन च।
तुरीयेणावगुण्ठ्यैव स्थापयेदात्मनोपरि॥ ३७

पाद्यमाचमनीयं च गन्धपुष्पसमन्वितम्।
अम्भसा शोधिते पात्रे स्थापयेत्पूर्ववत्पृथक्।
संहितां चैव विन्यस्य कवचेनावगुण्ठ्य च॥ ३८

अर्घ्याम्बुना समभ्युक्ष्य द्रव्याणि च विशेषतः।
आदित्यं च जपेद्देवं सर्वदेवनमस्कृतम्॥ ३९

घुटने भूमिपर टेककर देवदेव सूर्यको नमस्कार करके उस ताम्रपात्रको सिरसे लगाकर मूलमन्त्रके द्वारा अर्घ्य प्रदान करे। दस हजार अश्वमेधयज्ञ करनेपर जो फल बताया गया है, वह फल इस सर्वसम्मत सूर्यार्घ्य देनेसे प्राप्त हो जाता है। अर्घ्य प्रदान करके देवदेव त्रियम्बक शिवकी भक्तिपूर्वक उपासना करनी चाहिये; अथवा सूर्यका पूजन करके शिवयजनके लिये अग्निस्नान (भस्मस्नान) करना चाहिये। [शिवपूजाके लिये] पूर्वकी भाँति (सूर्यस्नानकी भाँति) शिवस्नान करना चाहिये, इसमें केवल मन्त्रकी भिन्नता है॥ १६—२९॥

सूर्यस्नान तथा शिवस्नानके पूर्व दन्तधावन कर लेना चाहिये। तीर्थमें स्नान करके विघ्नेश्वर गणेश, वरुण तथा गुरुकी अर्चना करनी चाहिये। पुनः तीर्थमें पद्मासन लगाकर तीर्थकी विधिवत् पूजा करनी चाहिये। इसके बाद तीर्थजल लेकर खड़ाऊ धारण करके जलसे सिक्त पवित्र मार्गसे पूजास्थानमें प्रवेशकर [आसनपर विधिवत् बैठकर] पूर्वकी भाँति करन्यास तथा देहन्यास करना चाहिये॥ ३०—३२॥

अर्घ्यस्थापन संक्षेपमें आगे बताया गया है। योगीको चाहिये कि पद्मासन लगाकर प्राणायाम करे॥ ३३॥

कमल आदि रक्तपुष्पोंका संग्रह करके अपने दक्षिणभागमें रखकर वामभागमें जलपात्र स्थापितकर सूर्यकी भावना करे। सभी कामनाओंकी सिद्धिके लिये सूर्यार्घ्य आदिमें ताम्रपात्र उपयोगी हैं। अर्घ्यपात्र लेकर विधिपूर्वक उसका प्रक्षालन करके पूर्वोक्त जलके साथ अर्घ्यद्रव्यसमन्वित अर्घ्यको अस्त्रोदक मन्त्रसे अन्य जलभाण्डमें प्रदान करे। संहितामन्त्रसे अभिमन्त्रित करके सद्योजात मन्त्रसे पूजन करके चतुर्थ मन्त्र (तत्पुरुषमन्त्र)-से अवगुण्ठनकर अपने ऊपर स्थापित करना चाहिये। जलसे शुद्ध किये गये पात्रमें गन्ध-पुष्पयुक्त पाद्य तथा आचमनीय जलको पूर्वकी भाँति पृथक्-पृथक् स्थापित करना चाहिये। संहितामन्त्रसे न्यास करके तथा कवचसे अवगुण्ठन करके अर्घ्यजलसे विशेषरूपसे सभी द्रव्योंका प्रोक्षण करके सभी देवताओंसे नमस्कार किये जानेवाले आदित्य देवका [इस प्रकार] जप करना चाहिये॥ ३४—३९॥

आदित्यो वै तेज ऊर्जो बलं यशो विवर्धति।
इत्यादिना नमस्कृत्य कल्पयेदासनं प्रभोः॥ ४०

प्रभूतं विमलं सारमाराध्यं परमं सुखम्।
आग्नेय्यादिषु कोणेषु मध्यमान्तं हृदा न्यसेत्॥ ४१

अङ्गं प्रविन्यसेच्चैव बीजमङ्कुरमेव च।
नालं सुषिरसंयुक्तं सूत्रकण्टकसंयुतम्॥ ४२

दलं दलाग्रं सुश्वेतं हेमाभं रक्तमेव च।
कर्णिकाकेसरोपेतं दीप्ताद्यैः शक्तिभिर्वृतम्॥ ४३

दीप्ता सूक्ष्मा जया भद्रा विभूतिर्विमला क्रमात्।
अघोरा विकृता चैव दीप्ताद्याश्चाष्टशक्तयः॥ ४४

भास्कराभिमुखाः सर्वाः कृताञ्जलिपुटाः शुभाः।
अथवा पद्महस्ता वा सर्वाभरणभूषिताः॥ ४५

मध्यतो वरदां देवीं स्थापयेत्सर्वतोमुखीम्।
आवाहयेत्ततो देवीं भास्करं परमेश्वरम्॥ ४६

नवाक्षरेण मन्त्रेण बाष्कलोक्तेन भास्करम्।
आवाहने च सान्निध्यमनेनैव विधीयते॥ ४७

मुद्रा च पद्ममुद्राख्या भास्करस्य महात्मनः।
मूलेनार्घ्यं ततो दद्यात्पाद्यमाचमनं पृथक्॥ ४८

भगवान् सूर्य तेज, ऊर्जा, बल और यशकी वृद्धि करते हैं (**आदित्यो वै तेज ऊर्जो बलं यशो विवर्धति**) इत्यादि यजुर्वेदश्रुति*से भगवान् सूर्यको नमस्कारकर उन्हें विशाल, स्वच्छ, श्रेष्ठ, प्रशस्त तथा अत्यन्त सुखदायक आसन प्रदान करना चाहिये। आग्नेय आदि चारों कोणोंमें मध्यसे अन्ततककी [महः, जनः, तपः, सत्यम्—इन चार] व्याहृतियोंका हृदयमें न्यास करना चाहिये। इसी प्रकार पूर्वोक्त अंगन्यास भी करना चाहिये। तदनन्तर बीज, अंकुर, छिद्रसहित नाल, सूत्र-कण्टकमय दल, श्वेत-स्वर्णिम तथा रक्तवर्णके दलाग्र, कर्णिका-केसरसे समन्वित तथा दीप्ता आदि शक्तियोंसे युक्त कमलकी भावना करनी चाहिये। [कमलके आठों दलोंमें] दीप्ता, सूक्ष्मा, जया, भद्रा, विभूति, विमला, अघोरा, विकृता—ये सब शुभ आठ शक्तियाँ सूर्यकी ओर मुख करके दोनों हाथ जोड़कर अथवा हाथोंमें कमल धारण करके सभी आभूषणोंसे भूषित होकर क्रमसे स्थित हैं—ऐसी भावना करे और उनके मध्यमें वरदायिनी भगवती गायत्रीको स्थापित करे। तदनन्तर देवीको तथा परमेश्वर भास्करको आवाहित करना चाहिये। भगवान् भास्करको बाष्कलोक्त नवाक्षरमन्त्रसे आवाहित करना चाहिये। आवाहनके समय सन्निधापन इसी मन्त्रसे किया जाता है। महात्मा भास्करको पद्म नामक मुद्रा दिखानी चाहिये। तत्पश्चात् मूलमन्त्रके द्वारा पृथक्-पृथक् अर्घ्य, पाद्य तथा आचमन प्रदान करना चाहिये॥ ४०—४८॥

पुनरर्घ्यप्रदानेन बाष्कलेन यथाविधि।
रक्तपद्मानि पुष्पाणि रक्तचन्दनमेव च॥ ४९

दीपधूपादिनैवेद्यं मुखवासादिरेव च।
ताम्बूलवर्तिदीपाद्यं बाष्कलेन विधीयते॥ ५०

आग्नेय्यां च तथैशान्यां नैर्ऋत्यां वायुगोचरे।
पूर्वस्यां पश्चिमे चैव षट्प्रकारं विधीयते॥ ५१

नेत्रान्तं विधिनाभ्यर्च्य प्रणवादिनमोऽन्तकम्।
कर्णिकायां प्रविन्यस्य रूपकध्यानमाचरेत्॥ ५२

सर्वे विद्युत्प्रभाः शान्ता रौद्रमस्त्रं प्रकीर्तितम्।
दंष्ट्राकरालवदनं ह्यष्टमूर्तिं भयङ्करम्॥ ५३

इसके बाद पुनः बाष्कलमन्त्रसे अर्घ्यस्नान प्रदान करनेके साथ विधिके अनुसार रक्तकमल, रक्तपुष्प, रक्तचन्दन, धूप, दीप, नैवेद्य, मुखवास (एला, लवंग आदि), ताम्बूल, आरती आदि प्रदान किये जाते हैं। तत्पश्चात् अग्निकोण, ईशानकोण, नैर्ऋत्यकोण, वायव्यकोण, पूर्व तथा पश्चिम दिशामें छः प्रकारका यजन किया जाता है। आदिमें प्रणव तथा अन्तमें नमः लगाकर अंगमन्त्रोंके द्वारा नेत्रपर्यन्त उन-उन अंगोंकी पूजा करके अपने हृदयकमलमें न्यास करके उनके प्रतिबिम्बका ध्यान करना चाहिये। उनके हृदय आदि

* यह मन्त्र कृष्ण यजुर्वेदके नारायणोपनिषद्में प्राप्त है।

वरदं दक्षिणं हस्तं वामं पद्मविभूषितम्।
सर्वाभरणसम्पन्ना रक्तस्रगनुलेपनाः॥ ५४

रक्ताम्बरधराः सर्वा मूर्तयस्तस्य संस्थिताः।
समण्डलो महादेवः सिन्दूरारुणविग्रहः॥ ५५

पद्महस्तोऽमृतास्यश्च द्विहस्तनयनः प्रभुः।
रक्ताभरणसंयुक्तो रक्तस्रगनुलेपनः॥ ५६

इत्थं रूपधरं ध्यायेद्भास्करं भुवनेश्वरम्।
पद्मबाह्ये शुभं चात्र मण्डलेषु समन्ततः॥ ५७

सोममङ्गारकं चैव बुधं बुद्धिमतां वरम्।
बृहस्पतिं महाबुद्धिं रुद्रपुत्रं च भार्गवम्॥ ५८

शनैश्चरं तथा राहुं केतुं धूम्रं प्रकीर्तितम्।
सर्वे द्विनेत्रा द्विभुजा राहुश्चोर्ध्वशरीरधृक्॥ ५९

विवृत्तास्योऽञ्जलिं कृत्वा भृकुटीकुटिलेक्षणः।
शनैश्चरश्च दंष्ट्रास्यो वरदाभयहस्तधृक्॥ ६०

स्वैःस्वैर्भावैः स्वनाम्ना च प्रणवादिनमोऽन्तकम्।
पूजनीयाः प्रयत्नेन धर्मकामार्थसिद्धये॥ ६१

सप्तसप्तगणांश्चैव बहिर्देवस्य पूजयेत्।
ऋषयो देवगन्धर्वाः पन्नगाप्सरसां गणाः॥ ६२

ग्रामण्यो यातुधानाश्च तथा यक्षाश्च मुख्यतः।
सप्ताश्वान् पूजयेदग्रे सप्तच्छन्दोमयान् विभोः॥ ६३

बालखिल्यगणं चैव निर्माल्यग्रहणं विभोः।
पूजयेदासनं मूर्तेर्देवतामपि पूजयेत्॥ ६४

अर्घ्यं च दापयेत्तेषां पृथगेव विधानतः।
आवाहने च पूजान्ते तेषामुद्वासने तथा॥ ६५

सभी अंग विद्युत्के समान कान्तिवाले तथा शान्त हैं, उनका अस्त्र रौद्र कहा गया है, बड़ी दाढ़ोंके कारण उनका मुख विकराल है, वे भयंकर आठ मूर्तियोंसे युक्त हैं, उनके दक्षिण हाथमें वरमुद्रा तथा बायें हाथमें पद्म सुशोभित है, समस्त आभरणोंसे सुशोभित, रक्तवर्णकी माला तथा रक्त अनुलेपसे युक्त तथा रक्तवस्त्र धारण किये उनकी सभी मूर्तियाँ (शक्तियाँ) उनके साथ विराजमान हैं। मण्डलसहित वे महादेव सिन्दूरके समान अरुण विग्रहवाले हैं, हाथमें कमल धारण किये हुए हैं, अमृतमय मुखमण्डलवाले हैं, दो हाथों तथा नेत्रोंसे सम्पन्न हैं, रक्त आभरणोंसे भूषित हैं तथा रक्तवर्णकी माला एवं अनुलेपसे सुशोभित हैं—इस प्रकारका रूप धारण किये हुए भुवनेश्वर भास्करका ध्यान करना चाहिये॥ ४९—५६ $^{1}/_{2}$ ॥

कमलके बाह्य भागमें सभी ओर मण्डलोंमें शुभ चन्द्र, मंगल, बुध, बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ बृहस्पति, महान् बुद्धिवाले रुद्रपुत्र शुक्र, शनैश्चर, राहु तथा धूम्रवर्ण कहे जानेवाले केतुका पूजन करना चाहिये। सभी दो नेत्रों एवं दो भुजाओंवाले हैं, राहु केवल ऊर्ध्व शरीर (सिर)-वाला है, वह मुख खोले हुए तथा टेढ़ी भौंहों और कुटिल दृष्टिवाला है, शनैश्चर भयंकर दाँतोंसे युक्त मुखवाला और हाथमें वरद तथा अभय मुद्रा धारण किये हुए हैं। इनके नामके आदिमें प्रणव (ॐ) तथा अन्तमें नमः लगाकर धर्म, काम एवं अर्थकी सिद्धिके लिये प्रयत्नपूर्वक इनकी पूजा करनी चाहिये॥ ५७—६१ ॥

सूर्यदेवके मण्डलके बाहर उनचास मरुद्गणोंकी भी पूजा करनी चाहिये। जो ऋषि, देव, गन्धर्व, नाग, अप्सराएँ, ग्रामणी, यातुधान (राक्षस) तथा यक्ष हैं, उनका भी पूजन करना चाहिये। भगवान् सूर्यके वेदमय सात अश्वोंकी पूजा पहले करनी चाहिये। प्रभु सूर्यके निर्माल्यग्राही बालखिल्य ऋषिगणोंकी भी पूजा करनी चाहिये। मूर्तिके आसन तथा देवताकी भी पूजा करनी चाहिये। उन सूर्य आदि देवताओंके आवाहनमें, पूजाके अन्तमें तथा विसर्जनके अन्तमें विधानके अनुसार पृथक्-पृथक् अर्घ्य प्रदान करना चाहिये॥ ६२—६५ ॥

सहस्रं वा तदर्धं वा शतमष्टोत्तरं तु वा।
बाष्कलं च जपेदग्रे दशांशेन च योजयेत्॥ ६६

कुण्डं च पश्चिमे कुर्याद्वर्तुलं चैव मेखलम्।
चतुरङ्गुलमानेन चोत्सेधाद्विस्तरादपि॥ ६७

एकहस्तप्रमाणेन नित्ये नैमित्तिके तथा।
कृत्वाश्वत्थदलाकारं नाभिं कुण्डे दशाङ्गुलम्॥ ६८

तदर्धेन पुरस्तात्तु गजोष्ठसदृशं स्मृतम्।
गलमेकाङ्गुलं चैव शेषं द्विगुणविस्तरम्॥ ६९

तत्प्रमाणेन कुण्डस्य त्यक्त्वा कुर्वीत मेखलाम्।
यत्नेन साधयित्वैव पश्चाद्धोमं च कारयेत्॥ ७०

षष्ठेनोल्लेखनं कुर्यात्प्रोक्षयेद्वारिणा पुनः।
आसनं कल्पयेन्मध्ये प्रथमेन समाहितः॥ ७१

प्रभावतीं ततः शक्तिमाद्येनैव तु विन्यसेत्।
बाष्कलेनैव सम्पूज्य गन्धपुष्पादिभिः क्रमात्॥ ७२

बाष्कलेनैव मन्त्रेण क्रियां प्रति यजेत्पृथक्।
मूलमन्त्रेण विधिना पश्चात्पूर्णाहुतिर्भवेत्॥ ७३

क्रमादेवं विधानेन सूर्याग्निर्जनितो भवेत्।
पूर्वोक्तेन विधानेन प्रागुक्तं कमलं न्यसेत्॥ ७४

मुखोपरि समभ्यर्च्य पूर्ववद्भास्करं प्रभुम्।
दशैवाहुतयो देया बाष्कलेन महामुने॥ ७५

अङ्गानां च तथैकैकं संहिताभिः पृथक् पुनः।
जयादिस्विष्टपर्यन्तमिध्मप्रक्षेपमेव च॥ ७६

सामान्यं सर्वमार्गेषु पारम्पर्यक्रमेण च।
निवेद्य देवदेवाय भास्करायामितात्मने॥ ७७

पूजाहोमादिकं सर्वं दत्त्वार्घ्यं च प्रदक्षिणम्।
अङ्गैः सम्पूज्य सङ्क्षिप्य हृद्युद्वास्य नमस्य च॥ ७८

इसके बाद एक हजार, पाँच सौ अथवा एक सौ आठ बार बाष्कल मन्त्रका जप करना चाहिये और पुनः दशांश हवन करना चाहिये। [हवनके लिये] मण्डलके पश्चिमकी ओर वर्तुलाकार कुण्ड बनाना चाहिये और चार अंगुल मापकी ऊँचाई तथा चौड़ाईवाली मेखला बनानी चाहिये। नित्य एवं नैमित्तिक कर्ममें एक हाथ प्रमाणका कुण्ड उत्तम होता है। कुण्डमें अश्वत्थ (पीपल)-के पत्तेके आकारकी दस अँगुल परिमाणकी नाभि बनानी चाहिये; उसके आधे (पाँच अंगुल) प्रमाणवाला और हाथीके ओष्ठके सदृश आकारका कुण्डका अगला भाग (योनि) बताया गया है। एक अंगुल प्रमाणका नाल बनाना चाहिये तथा कुण्डके बाहर दो अँगुल भाग छोड़कर मेखला बनानी चाहिये। इस प्रकार यत्नपूर्वक कुण्ड बनाकर ही बादमें हवन करना चाहिये॥ ६६—७०॥

छठे मन्त्रसे उल्लेखन करना चाहिये तथा जलसे कुण्डका प्रोक्षण करना चाहिये। तदनन्तर समाहित होकर प्रथम मन्त्रसे कुण्डके मध्यमें आसन कल्पित करना चाहिये और प्रथम मन्त्रसे ही प्रभावती [नामक] शक्तिकी स्थापना करनी चाहिये। क्रमसे गन्ध, पुष्प आदिसे बाष्कलमन्त्रके द्वारा ही विधिवत् पूजन करके, बाष्कलमन्त्रसे ही प्रत्येक क्रियाका पृथक् यजन करना चाहिये। तत्पश्चात् मूलमन्त्रसे विधिपूर्वक पूर्णाहुति होनी चाहिये। क्रमशः इस विधानके द्वारा सूर्यरूपी अग्नि उत्पन्न हो, तब पहले कहे गये विधानके अनुसार अग्निमें पूर्वोक्त कमलका न्यास करना चाहिये। हे महामुने! उस कमलके मुखपर पूर्वकी भाँति प्रभु भास्करकी सम्यक् पूजा करके संहितामन्त्रोंसे एक-एक अंगोंके लिये बाष्कलमन्त्रके द्वारा पृथक्-पृथक् दस आहुतियाँ प्रदान करनी चाहिये॥ ७१—७५ $^{1}/_{2}$ ॥

जयाहोमसे लेकर स्विष्टकृत्होमपर्यन्त पारम्पर्य क्रमसे सभी मार्गोंमें यज्ञकाष्ठका प्रक्षेप करना चाहिये। अमित आत्मावाले देवदेव भास्करको समस्त पूजा, होम आदिका समर्पण करके उन्हें अर्घ्य प्रदानकर उनकी प्रदक्षिणा करके अंगमन्त्रोंसे उनकी पूजाकर कर्मोंका

शिवपूजां ततः कुर्याद्धर्मकामार्थसिद्धये।
एवं सङ्क्षेपतः प्रोक्तं यजनं भास्करस्य च॥ ७९

उपसंहार करके अपने हृदयकमलमें विसर्जन करके तथा नमस्कार करनेके अनन्तर धर्म-कामकी सिद्धिके लिये शिवपूजा करनी चाहिये। इस प्रकार संक्षेपमें सूर्यपूजन कहा गया॥ ७६—७९॥

यः सकृद्वा यजेद्देवं देवदेवं जगद्गुरुम्।
भास्करं परमात्मानं स याति परमां गतिम्॥ ८०

सर्वपापविनिर्मुक्तः सर्वपापविवर्जितः।
सर्वैश्वर्यसमोपेतस्तेजसाप्रतिमश्च सः॥ ८१

पुत्रपौत्रादिमित्रैश्च बान्धवैश्च समन्ततः।
भुक्त्वैव विपुलान् भोगानिहैव धनधान्यवान्॥ ८२

यानवाहनसम्पन्नो भूषणैर्विविधैरपि।
कालं गतोऽपि सूर्येण मोदते कालमक्षयम्॥ ८३

पुनस्तस्मादिहागत्य राजा भवति धार्मिकः।
वेदवेदाङ्गसम्पन्नो ब्राह्मणो वात्र जायते॥ ८४

पुनः प्राग्वासनायोगाद्धार्मिको वेदपारगः।
सूर्यमेव समभ्यर्च्य सूर्यसायुज्यमाप्नुयात्॥ ८५

जो [मनुष्य] देवदेव जगद्गुरु परमात्मा भास्करका एक बार भी यजन करता है, वह परम गतिको प्राप्त होता है। वह पूर्णरूपसे सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है, सभी पापोंसे रहित हो जाता है, सभी ऐश्वर्योंसे सम्पन्न हो जाता है और अप्रतिम तेजस्वी हो जाता है। वह पुत्र, पौत्र, मित्र तथा बन्धु-बान्धव, धन-धान्य, यान-वाहन, भूषण आदिसे सम्पन्न होकर इस लोकमें विपुल सुखोंका सम्यक् भोग करके मृत्युको प्राप्त होनेपर सूर्यके साथ अनन्त कालतक आनन्द प्राप्त करता है। पुनः वहाँसे इस लोकमें जन्म लेकर धार्मिक राजा होता है अथवा वेदवेदांगसे सम्पन्न ब्राह्मण होता है। तत्पश्चात् पूर्वजन्मके दृढ़ संस्कारके कारण धर्मपरायण तथा वेदमें पारंगत वह मनुष्य भगवान् सूर्यकी ही भलीभाँति उपासना करके सूर्यसायुज्य प्राप्त करता है॥ ८०—८५॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे उत्तरभागे तत्त्वशुद्धिवर्णनं नाम द्वाविंशतितमोऽध्यायः॥ २२॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत उत्तरभागमें 'तत्त्वशुद्धिवर्णन' नामक बाईसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २२॥

तेईसवाँ अध्याय

हृदयदेशमें भगवान् शिवकी मानसपूजा एवं न्यासयोगका वर्णन

शैलादिरुवाच

अथ ते सम्प्रवक्ष्यामि शिवार्चनमनुत्तमम्।
त्रिसन्ध्यमर्चयेदीशमग्निकार्यं च शक्तितः॥ १

शैलादि बोले—हे सनत्कुमार! अब मैं आपको अत्युत्तम शिव-पूजनकी विधि बताऊँगा। तीनों कालोंमें भगवान् महेश्वरका पूजन करना चाहिये और सामर्थ्यानुसार हवन भी करना चाहिये॥ १॥

शिवस्नानं पुरा कृत्वा तत्त्वशुद्धिं च पूर्ववत्।
पुष्पहस्तः प्रविश्याथ पूजास्थानं समाहितः॥ २

प्राणायामत्रयं कृत्वा दाहनाप्लावनानि च।
गन्धादिवासितकरो महामुद्रां प्रविन्यसेत्॥ ३

सर्वप्रथम शिवस्नान करके पूर्वकी भाँति तत्त्वशुद्धि करे और हाथमें पुष्प आदि लेकर पूजास्थानमें प्रवेश करके समाहितचित्त हो तीन प्राणायाम करके दाहन, आप्लावन आदि शुद्धि करके गन्ध आदिसे हाथोंको सुगन्धित करके [योगशास्त्रमें कही गयी] महामुद्राकी रचना करनी चाहिये॥ २-३॥

विज्ञानेन तनुं कृत्वा ब्रह्माग्नेरपि यत्नतः।
अव्यक्तबुद्ध्यहङ्कारतन्मात्रासम्भवां तनुम्॥ ४

अव्यक्त, बुद्धि, अहंकार तथा पंचतन्मात्राओंसे